प्रो० राजाराम जैन
एम० ए०, एफ० एन० जी० एस०, शास्त्राचार्य, साहित्यरत्न

रइधू-साहित्य की प्रशस्तियों में
ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सामग्री

भारतीय वाङ्मय के उन्नयन में जिन वरेण्य साधकों ने अनवरत श्रम एवं अथक साधना करके अपना उल्लेख्य योगदान किया है, उनमें महाकवि रइधू[1] अपना प्रमुख स्थान रखते हैं. उन्होंने अपने जीवनकाल के सीमित समय में २३ से भी अधिक विशाल अपभ्रंश ग्रंथों की रचना करके साहित्य-जगत् को आश्चर्यचकित किया है. रचनाओं का विषय-वैविध्य संस्कृत-प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि भाषाओं पर असाधारण पाण्डित्य, इतिहास एवं संस्कृति का तलस्पर्शी ज्ञान, समाज एवं राष्ट्र को साहित्य, संगीत एवं कला के प्रति जागरूक कराने की क्षमता जैसी उक्त कवि में दिखाई पड़ती है वैसी अन्यत्र शायद ही कहीं मिलेगी.

कवि की कवित्वशक्ति उसके वर्ण्य-विषय में तो स्पष्ट दिखती ही है किन्तु समाज एवं राजन्यवर्ग के लोगों को भी उसने साहित्य एवं कलाप्रेमी बना दिया था, यह कवि रइधू की अद्वितीय देन है. ऐसी लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी एवं सरस्वती का सदा से वैरभाव चला आया है. कई जगह यह उक्ति सत्य भी सिद्ध हुई लेकिन कवि ने उनका जैसा समन्वय किया-कराया, वही उसकी विशिष्ट एवं अद्भुत मौलिकता है, उदाहरणार्थ कवि की प्रशस्तियों में से २-३ अत्यन्त मार्मिक प्रसंग उपस्थित किये जाते हैं, जिनसे कवि-प्रतिभा का चमत्कार स्पष्ट देखने को मिल जाता है.

महाकवि रइधू की साधना-भूमि गोपाचल (ग्वालियर) में संघवी कमलसिंह नामक एक नगरसेठ रहते थे जो अत्यन्त उदारवृत्ति से जीवन-यापन करते थे. वे महाकवि के मित्र एवं परमभक्त भी थे. राज्यपदाधिकारी होने से वे राज्य के कार्यों में ही व्यस्त रहते थे. एक दिन वे उससे घबराकर महाकवि से भेंट करते हैं तथा निवेदन करते हैं:

सयणासण तंबेरम तुरंग, धयछत्तचमर भामिणि रहंग ।
कंचणधणकणघरदविणकोस, जाणइ जंपाइ जणिय तोस ।
तह पुण णयरायरदेसगाम, बंधव णंदण णयणाहिराम ।
सारयरुअणुपुणुबच्छुभाउ, जं जं दीसइ णाणा सहाउ ।
तं तं जि एछु पावियइ सव्छु, लब्भइ ण कव्व-माणिक्कु भव्वु ।
एच्छु जि बहु बुह णिवसहिउ किट्ठ, णउ सुकउ कोवि दीसइ मणिट्ठ ।
भो णिसुणि वियक्खण कहमि तुज्झु, रक्खमि ण किंपि णिय चित्त गुज्झु । —सम्मत्त० १।७।१-७.

तुहु पुणु कव्वरयण रयणायरु, बालमित्तु अम्हहं णेहाउरु।
तुहु महु सच्चउ पुण्ण सहायउ, महु मणिच्छ पूरण अणुरायउ । —सम्मत्त० १।१४।८-६.

---

१. महाकवि रइधू के जीवनवृत्त एवं साहित्य-परिचय के लिए 'आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ'में प्रकाशित मेरा निबन्ध देखिए—पृष्ठ १०१-११५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् "हे कविवर, शयनासन, हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, चमर, सुन्दर रानियाँ, रथ, सेना, सोना, धन-धान्य, भवन, सम्पत्ति, कोष, नगर, देश, ग्राम, बन्धु-बान्धव, सुन्दर सन्तान, पुत्र, भाई आदि सभी मुझे उपलब्ध हैं. सौभाग्य से किसी भी प्रकार की भौतिक सामग्री की मुझे कमी नहीं है किन्तु इतना सब होने पर भी मुझे एक चीज का अभाव सदैव खटकता रहता है और वह यह कि मेरे पास काव्यरूपी एक भी सुन्दर मणि नहीं है. इसके बिना मेरा सारा ऐश्वर्य फीका-फीका लगता है. हे काव्यरूपी रत्नों के रत्नाकर, तुम तो मेरे स्नेही बालमित्र हो, तुम्हीं हमारे सच्चे पुण्य-सहायक हो. मेरे मन की इच्छा पूर्ण करनेवाले हो. इस नगर में बहुत से विद्वज्जन रहते हैं, किन्तु मुझे आप जैसा कोई भी अन्य सुकवि नहीं दिखता. अतः हे कविश्रेष्ठ, मैं अपने हृदय की गाँठ खोलकर सच-सच अपने हृदय की बात आपसे कहता हूँ कि आप एक काव्य की रचना करके मुझ पर अपनी महती कृपा कीजिये.

महाकवि रइधू ने कमलसिंह संघवी की उक्त अत्यन्त विनम्र प्रार्थना स्वीकृत कर उत्तर में कहा:

सुसहाउ भव्व तुहु दिंति णिरु, तुहु पुणु कमलायरु होहि थिरु।
लइकरि चिंतियउ पइं, भालहिं पुणहु णियय मइ।
मा चिंत करहिं सुपसण मणा, भवि भवि लब्भहिं धण कणरयणा।
दुल्लहु जिणधम्मु जि होइ परा, तं तुहु आयरहिं जि विणय परा।—सम्मत्त० १, ८, १३-१६

अर्थात् 'हे भाई कमलसिंह, तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करो. तुमने जो विचार प्रकट किये हैं वे तुम्हारे ही अनुरूप हैं. अब चिंता करने की आवश्यकता नहीं, प्रसन्नचित्त बनो (मैं इच्छानुसार तुम्हें काव्यरचना कर दूंगा) जन्म-जन्मान्तर में इसी प्रकार स्वर्ण धन-धान्य एवं रत्नों से युक्त बने रहो तथा दुर्लभता से प्राप्त इस धर्म एवं मानव-जीवन में हितकारी उच्च कार्यों को सदा करते रहो !'

जब कवि की इस प्रकार की स्वीकारोक्ति सुनी तो कमलसिंह आनन्दविभोर हो उठे. उन्होंने अपने जीवन को सफल मान लिया तथा तुरन्त ही वे यह समाचार राजा डूँगरसिंह को देने के लिये राज-दरबार में पहुँचते हैं तथा शिष्टाचार प्रदर्शन के बाद निवेदन करते हैं:

"हे राजन्, मैंने कुछ धर्मकार्य करने का विचार किया है, किन्तु उसे कर नहीं पा रहा हूं, अतः प्रतिदिन मैं यही सोचता रहता हूँ कि अब वह आपकी कृपापूर्ण सहायता एवं आदेश से सम्पूर्ण करूँगा. आपका यश एवं कीर्ति अखण्ड एवं अनन्त है. मैं तो इस पृथ्वी पर एक दरिद्र एवं असमर्थ हूँ, इस मनुष्य-पर्याय में मैं क्या कर सकता[1] हूँ !" कमलसिंह का यह निवेदन सुनकर युवराज कीर्तिसिंह[2] अत्यन्त पुलकित हो उठे. राजा डूँगरसिंह ने भी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहा :

वियसिवि जंपिउ डूंगरराएं, कमलसीह वणिवर संवाएं।
पुण्णु कज्जु जं तुव मणि रुच्चइं, तं विरयहि साहु समुच्चइं।
जे पुणु अण्ण केवि सुसहायण, करहु करहु ते धम्म महायण।
किंपि संक मा किज्जहु चित्तहें, संतुट्ठउह धम्मणिमित्तहि।
जहि सोरट्ठि वीसल णिवरज्जहिं, धम्मु पविट्ठउ चिरु णिरवज्जहिं।
वच्छ तेयपालक्खवणिंदहिं, पवर तिच्छ णिम्मिय गयदंतहिं।
जिह पेरोजसाहि सुपसायं, जोइणिपुरि णिवसंत अमायं।
सारग साहु णाम विक्खायं, पविहिय जत्त धम्म अणुराएं।
तिह तुहुँ विरयहि एच्छु गुणायरु, लइ लइ पउरु दव्वु धम्मायरु।
न सु जेत्तडउ विरिअछइं, सो सयलु जिवेक्कउ कयणि छइं।

१. दे० सम्मत्त० १।११।१-५.
२. राजा डूँगरसिंह का पुत्र, कई स्थानों पर इसका नाम 'करनसिंह' भी उपलब्ध होता है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणइ हउ असेसु पूरेसमि, जं जं मग्गहु तं तं देसमि ।
पुणु पुणु एम तेण तहिं भणिउं, पुणु तंबोलु देवि सम्माणिउ ।
पुणु सुरिताण सीह णियभिच्चहु, सामिय धम्म चिंति मणिच्चहु ।
तहु आएसु णिवेण पुणु दिरणउ, कज्जहिं धम्म सहाउ अछिरणउ ।
कमलसीहु जं तुम्हं भासइं, तं तहु पविहिज्जहि सुसमासइ ।
मणिवि पसाउ तेण पडिवरणउ, अज्झु सामि किंकरु हउ धरणउ ।—सम्मत्त० १।११।६-२०.

अर्थात् 'हे सज्जनोत्तम, जो भी पुण्यकार्य तुम्हें रुचिकर लगे उसे अवश्य ही पूरा करो । हे महाजन, यदि धर्म-सहायक और भी कोई कार्य हों तो उन्हें भी पूरा करो. अपने मन में किसी भी प्रकार की शंका मत करो. धर्म के निमित्त आप संतुष्ट रहें. जिस प्रकार राजा वीसलदेव के राज्य में सौराष्ट्र (सोरट्ठि) में धर्म-साधना निर्विघ्न रूप से प्रतिष्ठित थी, वस्तुपाल-तेजपाल नामक व्यापारियों ने हाथीदाँतों (?) से प्रवर तीर्थराज का निर्माण कराया था. जिस प्रकार पेरोजसाहि (फीरोजशाह) की महान् कृपा से योगिनीपुर (दिल्ली) में निवास करते हुए सारग ने अत्यन्त अनुराग पूर्वक धर्मयात्रा करके ख्याति प्राप्त की थी. उसी प्रकार हे गुणाकर, धर्मकार्यों के लिये मुझसे, पर्याप्त द्रव्य ले लो. जो कार्य करना है उसे निश्चय ही पूरा कर लो. यदि द्रव्य में कुछ कमी आ जाय तो मैं उसे पूर्ण कर दूँगा. जो जो माँगोगे वही-वही (मुँह माँगा) दूँगा. राजा ने बार-बार आश्वासन देते हुए कमलसिंह को पान का बीड़ा देकर सम्मानित किया. राजा का आश्वासन एवं सम्मान प्राप्त कर कमलसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा राजा से इतना ही कह सके कि हे स्वामिन् आज आपका यह दास धन्य हो गया.'

महाकवि ने कमलसिंह की बात स्वीकार तो करली किन्तु फिरभी उसके मन में शंका होती है कि सम्भवतः दुर्जन उसके कार्यों में विघ्न बाधा उपस्थित करें, तब ? उस स्थिति में कमलसिंह का उत्साह प्रेरणा एवं साहस-भरा आश्वासन देखिये. वे कहते हैं :

संघाहिवेण तातहु पउत्तु, भोकइ पहाण णिसुणहि णिरुत्तु ।
दुज्जण सज्जण ससहाव होंति, अवगुण गुणाइ ते सइं जिलिंति ।
जिह उरह सीय रवि सीस हणम्मि, णिय पयइ ण मेल्लहि पुणु कहम्मि ।
चंदहु उज्जोयं तसइंसाणु, ताकिं सो छंडइ णियय ठाणु ।
जइ पुणु विउलूवहु दुक्खहेउ, ता रवि सुएवि किं णियय तेउ ।
जइ तक्करु साहुहु णउ सहेइ, ता किं सोजग्गंतउ रहेइ ।
जूवासएण किं कोविवच्छु, छंडइ भणु तणु इच्छु जिपसच्छु ।—सम्मत्त० १।१६।१-७

अर्थात् हे कविश्रेष्ठ, सुनिये, दुर्जन-सज्जन तो अपने-अपने स्वभाव से होते हैं । वे अवगुणों एवं सद्गुणों के बल पर ही जीवित रहते हैं. रवि एवं शशि एक ही आकाश में अपनी उष्णता एवं शीतलता का क्या परित्याग कर देते हैं ? धूलि के कणों से आच्छादित हो जाने पर भी क्या चन्द्रमा अपने प्रकाश को देना छोड़ देता है. राहु के द्वारा ग्रस्त हो जाने पर भी क्या सूर्य अपनी तेजस्विता छोड़ देता है. यदि चोर साहूकार की उपस्थिति न चाहे तो क्या वह संसार में रहना ही छोड़ दे. यदि जुआरी व्यक्ति किसी वस्तु को दाँव पर लगा दे तो क्या उससे वह वस्तु अप्रशस्त हो जाती है. तथा इससे दूसरा कोई अन्य सज्जन व्यक्ति उसकी चाह करना भी छोड़ दे. अतः हे कविवर, आप निश्चिन्त मन होकर अपनी काव्य रचना करें.

महाकवि के एक दूसरे सहयोगी भक्त थे हरिसिंह साहू. उनकी तीव्र इच्छा थी कि उनका नाम चन्द्रविमान में लिखा जाय. अतः उन्होंने कवि से सविनय निवेदन किया कि :

महु साणुराव तहु मित्त जेण, विरणत्ति मज्झु अवहारि तेज ।
महु णामु लिहहि चंदहो विमाणु, छय वयणु सुद्ध णिय चित्ति ठाणु ।—बलभद्र० १।४।११-१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् 'हे मित्र, मुझ पर अनुरागी बनकर मेरी विनती सुन लीजिये एवं मेरे द्वारा इच्छित बलभद्र पुराण नामक रचना लिखकर मेरा नाम चन्द्रविमान में अंकित करा दीजिये.'

हरिसिंह की उक्त प्रार्थना सुनकर कवि ने कई कारणों से अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए तथा रामचरित की विशालता का अनुभव करते हुए उत्तर दिया :

घडएण भरइ को उवहि तोउ, को फणि सिरमणि पयडइ विणोउ ।
पंचाणण मुहि को खिवइ हत्थु, विणु सुत्तें महि को रयइवत्थु ।
विणु बुद्धिएतहं कव्वहं पसारु, विरएप्पिणु गच्छमि केम पारु । —बलभद्र० १।४।१–४

अर्थात् 'हे भाई, रामचरित (अपर नाम बलभद्र-चरित) का लिखना सरल कार्य नहीं, उसके लिखने के लिये महान् साधना, क्षमता एवं शक्ति की आवश्यकता है. आप ही बताइये भला घड़े में समस्त समुद्रजल को कौन भर सकता है ? साँप के सिर से मणि को कौन ले सकता है ? प्रज्वालित पञ्चाग्नि में कौन अपना हाथ डाल सकता है ? बिना धागे से रत्नों की माला को कौन गूँथ सकता है ? बिना बुद्धि के इस विशाल काव्य की रचना करने में मैं कैसे पार पा सकूँगा ?

उक्त प्रकार से उत्तर देकर कवि ने साहू की बात को सम्भवतः टाल देना चाहा, किन्तु साहू साहब बड़े ही चतुर थे. उन्होंने ऐसे अवसर पर वणिक्बुद्धि से कार्य किया. उन्होंने कवि को अपनी पूर्व मैत्री का स्मरण दिलाते हुए कहा कि :—

'कविवर, आप तो निर्दोष काव्य-रचना में धुरन्धर हैं. शास्त्रार्थ आदि में निपुण हैं. आपके श्रीमुख में तो सरस्वती का वास है. आप काव्य-प्रणयन में पूर्ण समर्थ हैं. अतः इस (रामचरित) ग्रन्थ की रचना अवश्य ही करने की कृपा कीजिये.'[1]

बस, कवि की सहृदय भावुकता को उकसाने के लिए इतना कथन मात्र पर्याप्त था. अन्ततः वह 'रामचरित' लिखने के लिये तैयार हो जाता है.

अपनी विद्वत्ता एवं सत्कवित्व के कारण कवि का समाज में बहुत ही उच्च स्थान था. सदाचरण, कार्यनिष्ठा, परदुःख-कातरता, एवं परोपकारवृत्ति के कारण महाकवि रइधू ने क्या राजा और क्या रंक, सभी के हृदयों पर एकच्छत्र शासन किया था. यही कारण है कि यदि कवि क्वचित् कदाचित् किसी को कोई आदेश देता था तो उसे लोग अपने गौरव की बात मानते थे. तथा उसे पूर्ण करने में लोग अपना अहोभाग्य मानते थे. एक समय की घटना है कि महाकवि को 'पासणाह चरिउ' की रचना करने की इच्छा जागृत हुई तथा उसके लिए उन्हें आर्थिक सहयोग की आवश्यकता पड़ी. तब उन्होंने साहू कुल शिरोमणि श्रीखेमसिंह को आदेश दिया कि 'तुम इस ग्रन्थ' (पासणाह चरिउ) 'रचना का भार वहन करो.'[2] साहू खेमसिंह ने जब यह सुना तो वे गद्गद् हो उठे. उनके शरीर में रोमांच हो आया तथा इस प्रकार के कवि के आदेश से उन्होंने अपने को गौरवान्वित समझकर उनका आभार माना.[3] उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कवि से कहा :

णियगेहि उवण्णउ कप्परुक्खु, तहु फलु को णउ वंछइ ससुक्खु ।
पुण्णेण पत्तु जइ कामधेणु, को णिस्सायइ पुणु विगयरेणु ।
तह पइ पुणु महु किउ सइं पसाउ, महु जम्मु सयलु भो अज्जजाउ ।
तुहुँ धण्णु जासु एरिसउ चित्तु, कइयण गुणु दुल्लहु जेण पत्तु । —पासणाह० १।८।१–४

१. देखिये, बलभद्र० १।५।५–६.
२. देखिये, पासणाह० १।७।१२.
३. देखिये, पासणाह० १।७।१३–१४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् "हे कविवर, अपने ही घर में उत्पन्न हुए कल्पवृक्ष के सुखद फल को कौन नहीं खाना चाहेगा ? पुण्य से प्राप्त हुई कामधेनु को कौन शीघ्र ही नहीं दुहना चाहेगा ? आपने काव्य-रचना की स्वतः ही स्वीकृति देकर मुझ पर जो महती कृपा की है उससे मेरा समस्त जीवन ही सफल हो गया है. आप धन्य हैं जिन्हें कविजनों को दुर्लभ ऐसा सुन्दर एवं सरस हृदय प्राप्त हुआ है."

इतना ही नहीं, जब 'पासणाह चरिउ' की परिसमाप्ति हुई तथा कवि ने साहू खेमसिंह को उक्त रचना समर्पित की तो साहू साहब ने उसे अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ ग्रहण किया तथा अत्यन्त हर्ष विभोर होकर उन्होंने कवि को द्वीप द्वीपान्तरों से मँगवाये हुए वस्त्राभूषणादि उपहार स्वरूप भेंट किये जिससे कवि को भी बड़ी ही आत्म सन्तुष्टि हुई.[1]

महाकवि रइधू के त्याग, तपस्या एवं साहित्य-साधना से उनके समकालीन ग्वालियर नरेश डूँगरसिंह एवं उनके पुत्र राजा कीर्तिसिंह भी बहुत ही अधिक प्रभावित थे. डूंगरसिंह ने तो कवि को राजमहल में बैठकर ही साहित्य-साधना करने का निवेदन किया था. जिसे कवि ने स्वयं ही इस प्रकार व्यक्त किया है :

गोवग्गिरि दुग्गमि णिवसंतउ बहुसुहेण तहिं ।
पणमंतउ गुरुपाय पायडंतु जिणसुत्तु महिं । —सम्मइ० १।३।९–१०

रइधू-साहित्य का पारायण करने से विदित होता है कि वे आदिनाथ प्रभु के परम भक्त थे, किन्तु उनके मन में आदि-नाथ प्रभु के प्रति जिस प्रकार की कल्पना थी, तदनुरूप कोई भी प्रतिबिम्ब उनके आसपास न था. तब उनके मन में यह इच्छा जागृत हुई कि ग्वालियर-दुर्ग में ही उसकी एक विशाल मूर्त्ति का निर्माण हो. यह बात राजा डूंगरसिंह तथा वहाँ के अन्य लोगों के कानों में पहुँची ही थी कि वह कार्य ही प्रारम्भ हो गया. फिर वह मूर्त्ति मामूली नहीं बनी. महाराज डूंगरसिंह ने दूर-दूर से चतुर कलाकारों को बुलाकर ५७ फीट ऊँची ऐसी भव्य आदिनाथ की प्रतिमा का निर्माण करा दिया जो दक्षिण भारत के गोम्मटेश्वर का स्मरण कराती है. उक्त मूर्त्ति के बाद ही मूर्त्तिकला का कार्य समाप्त नहीं हो गया. तत्पश्चात् ही योजना का पुनर्विस्तार हुआ तथा राजा डूँगरसिंह के जीवनपर्यन्त तथा उनके बाद उनके पुत्र राजा कीर्त्तिसिंह के राज्य-काल तक कुल लगातार तैंतीस वर्षों तक (वि० सं० १४९७-१५३० तक) यह कार्य चलता रहा जिसमें अगणित जैन-मूर्त्तियों का निर्माण हुआ. कवि ने लिखा है :

अगणिय अणपडिम को लक्खइ, सुरगुरु ताह गणण जइ अक्खइ । —सम्मत्त० ११३।५

उक्त प्रतिमाओं में से आदिनाथ की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा स्वयं कवि रइधू ने ही की थी. इसी से यह भी विदित होता है कि वे प्रतिष्ठाचार्य भी थे. मूर्त्ति लेख निम्न प्रकार है—

'संवत् १४९७ वर्षे वैशाख........७ शुक्ले पुनर्वसुनक्षत्रे श्री गोपाचल दुर्गे महाराजाधिराज राजा श्री डुंग (रसिंह) राज्य संवर्त्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरगच्छे पुष्करगणे भ० गुणकीर्त्ति देवाः तत्पट्टे भ० यशः कीर्त्तिदेवाः प्रतिष्ठाचार्य पण्डित रइधू तेषां आम्नाये अग्रोतवंशे गोयल गोत्रे साधु[2]

राजा डूंगरसिंह एवं कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में निर्मित उक्त मूर्त्तियों ने इतिहास एवं कला के क्षेत्र में जैसा अद्भुत कार्य किया, वह अनूठा है. मध्यभारत का १४-१५ वीं सदी का जीता-जागता इतिहास इन मूर्त्तियों की आकृतियों से स्पष्ट झाँकता प्रतीत होता है. तत्कालीन मालव-जनपद की राजनैतिक आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की स्वर्णमयी रेखाएँ इन मूर्तिलेखों में विद्यमान हैं. अपनी विशिष्ट कला के कारण सदियों से इन मूर्त्तियों ने देशी-विदेशी सभी कलाकारों एवं पर्यटकों को आकर्षित किया है. सम्राट बाबर, फादर माण्ट्सेराट, जनरल-कनिंघम, जेम्स फर्ग्युसन, क्रेमरेश, एवं श्री एम० बी० गर्दे, डा० रायचौधरी, राजेन्द्रलाल मित्रा, हरिहरनिवास द्विवेदी प्रभृति

१. देखिये, पासणाह० १।१०।१–८.

२. देखिये—भट्टारक सम्प्रदाय लेखाङ्क ५६० पृष्ठ संख्या २१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शकों एवं इतिहास-मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से उक्त-मूर्त्तिकला की प्रशंसा की है. डा० रायचौधरी ने लिखा है :[1]

"He (Dungarsen) was a great patron of the Jaina faith and held the Jainas in high esteem. During his eventful reign the work of carving Jaina images on the rock of the fort of Gwalior was taken in hand; it was brought to completion during the reign of his successor Raja Karan Singh.[2] All around the base of the fort the magnificent statues of the Jaina Pontiff of antiquity gaze from their tall niches like mighty guardians of the great fort and its surrounding landscape. Babar was much annoyed by these Rock-sculptures as to issue orders for their destruction in 1557. A. D.

मुगलसम्राट् बाबर ने अपने 'बाबरनामा' में इन्हीं मूर्त्तियों के विषय में लिखा था जिसका जनरल कनिंघम ने अंग्रेजी अनुवाद[3] इस प्रकार किया है :

They have hewn the solid rock of this Adiva and sculptured out of it idols of larger and smaller size. On the south part of it is a large size which may be about 40ft in height. These figures are perfectly naked, without even a rag to cover the parts of generation. Adiva is far from being a mean place, on the contrary, it is extremely pleasent. The greatest fault consists in the idol figures all about it. "I directed these idols to be destroyed."

इसी प्रकार भारत सरकार के रेलवे विभाग ने ग्वालियर सम्बन्धी अपनी एक पुस्तिका[4] में "Rock-Giants" के नाम से उक्त मूर्त्तियों का परिचय निम्न प्रकार दिया है :

Round the base of Gwalior Fort are several enormous figures of the Jaina Tirthamkaras or pontiffs which Vie in dignity with the colossal effigies of that greatest of all self advertisers Remses II who plastered Egypt with records of himself and his achievements. These Jaina statues were excavated from 1440-1473 A. D.

इस प्रकार कविकुल दिवाकर रइधू की प्रेरणा से ग्वालियर के "दो नरेशों के राज्य में जैन-साहित्य, संस्कृति एवं कला को प्रश्रय मिला और उनके द्वारा मूर्त्तिकला का जो विकास हुआ उसकी ये भावमयी प्रतिमाएँ प्रतीक हैं. ३३ वर्षों के थोड़े समय में ही कुरूप एवं बेडौल चट्टानें महानता, शान्ति एवं तपस्या की भाव-व्यंजना से मुखरित हो उठीं. अब उक्त प्रमाणों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि महाकवि रइधू ने सचमुच ही अपने महान् व्यक्तित्व एवं कृतित्व से मालव जनपद में एक नवीन सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा लक्ष्मी एवं सरस्वती के चिरवैर को दूरकर उनमें एक चमत्कार-पूर्ण समन्वय स्थापित किया. अतः समन्वयवादी कवि के रूप में रइधू भारतीय साहित्य में सदा ही स्मरणीय रहेंगे.

रइधू-साहित्य में उपलब्ध प्रशस्तियों में अन्य जो विविध सूचनाएँ मिलती हैं वे भी कई दृष्टियों से अत्यन्त मूल्यवान् हैं. सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सुन्दर वर्णन, समकालीन राजाओं का परिचय, नगर-वर्णन आदि अपने विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं.

---

१. देखिये—The Romance of the Fort of Gwalior 1931 Page 19-20.

२. समग्र रइधू-साहित्य में "कीर्त्तिसिंह" यही नाम मिलता है.

३. See Murry's Northen India Page 381-382.

४. See "Gwalior" (Published by the ministry of Railways) Govt. of India Delhi.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाजिक-दृष्टि से कवि ने तत्कालीन कई तथ्यों के साथ ही व्यक्तियों की प्रवृत्तियों पर सुन्दर प्रकाश डाला है. रइधू द्वारा वर्णित व्यक्ति नैतिक-वातावरण में पला-पुसा मिलता है. वह निरालस्य, उद्योगी, धार्मिक, दानशील, परदुःखकातर, स्वाध्याय जिज्ञासु एवं साहित्य-रसिक, गुणीजनों के प्रति श्रद्धालु तथा दीर्घायुष्य था. निरामिष, सात्त्विक भोजियों का दीर्घायुष्य होना स्वाभाविक भी था. कवि के समय में मनुष्य के सौ वर्षों तक जीवित रहने की धारणा एक साधारण-सी बात थी. रइधू का एक भक्त संसार से निर्विण्ण होकर कवि से कहता है कि "मनुष्य की आयु सौ वर्ष मात्र की है, उसमें से आधा जीवन तो सोने-सोने में निकल जाता है."[१] भारत सरकार के इम्पीरियल गजैटियर के अनुसार भी मध्यभारत के जैनियों की आयु अपेक्षाकृत लम्बी देखी गई है :

The age statistics show that the Jainas, who are the richest and best mourished community are the longest, while the Animists and Hindus show the gratest fecundity.[२]

तत्कालीन समाज की जिनवाणी-भक्ति एवं साहित्य-रसिकता के परिणामस्वरूप ही महाकवि रइधू तथा अन्य कवियों का अमूल्य विशाल साहित्य लिखा जा सका था. उन लोगों के निःस्वार्थ एवं निश्छल आश्रय में रहकर कविगण मां-भारती की अमूल्य सेवाएं करते रहे. कवियों ने भी अपने परमभक्त एवं श्रद्धालु आश्रयदाताओं की भक्ति से प्रभावित होकर उनका स्वयं का तथा उनकी ६-६; ७-७ पीढ़ियों तक की वंशावलियाँ एवं पारिवारिक इतिहास आदि को अपनी ग्रन्थ-प्रशस्तियों के माध्यम से लिखकर उनके प्रति कृतज्ञता का परिचय देकर एक ओर जहाँ अपनी अमर-कृतियों के साथ उन्हें अमर बना दिया, वहीं दूसरी ओर भावी परम्पराओं के लिये एक अमूल्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भी तैयार कर दिया. इस प्रकार अग्रवाल, जैसवाल, खण्डेलवाल, पद्मावति-पुरवाल आदि जातियों से सम्बन्ध रखने वाले बहुमूल्य तथ्य इस साहित्य में उपलब्ध हैं.

मालव-जनपद की महिला-समाज से तो कवि इतना अधिक प्रभावित था कि उनके गुणों के वर्णन में कवि की लेखनी अबाधगति से दौड़ती थी. कवि लिखता है कि "वहाँ की नारियाँ दृढ़शीलव्रत से युक्त थीं. विविध प्रकार के दानों से पात्रों का संरक्षण करती थीं. ऐसा प्रतीत होता है मानों वहाँ नारी के रूप में साक्षात् लक्ष्मी ने ही अवतार ले लिया है. वहाँ असुन्दर तो कोई दीखता ही न था. प्रातःकाल क्रियाओं से निवृत्त होकर सुन्दर-सुन्दर मोती जड़े वस्त्रा-भूषणादि धारणकर पूजा के निमित्त प्रमुदितमन से नारियाँ मन्दिरों की ओर जाती थीं तथा देव एवं गुरु के चरणों में माथा झुकाती थीं. सम्यग्दर्शन के पालन में प्रवीण थीं. पर पुरुषों को अपने भाई के समान मानती थीं. मैं वहाँ के स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में अधिक क्या कहूँ जहाँ कि बच्चा-बच्चा भी सप्तव्यसनों का त्यागी था."[३] इस प्रकार महाकवि रइधू की नारी परमशीलवती, पतिभक्ता, धार्मिक, गृहकार्यकुशल, उदारचित्त, परदुःखकातर, दानशीला, परिवार-पोषक एवं आलस्यविहीन है. उसे अपने बच्चों के सुसंस्कारों का सदा ध्यान रहता है. उसकी देख-रेख में बच्चों का स्वभाव ऐसा हो जाता है कि वे सप्तव्यसनों तथा अन्य अनैतिक-प्रवृत्तियों से सदा दूर रहकर परम आस्थावान बन जाते हैं. इसे ही माँ का सच्चा मातृत्व कहा जा सकता है. रइधू ने नारी में माँ के दर्शन करके ही उसे ऐसा चित्रित किया है. इसलिए जहाँ उसे नारी-सौन्दर्य के वर्णन करने का अवसर मिला है, वहाँ बस "गइ हंसजीव" (हंस की गति के समान चलने वाली); "ललिय गिरा" (सुन्दर मधुर वाणी बोलने वाली) जैसे विशेषण तक ही उन्होंने अपने को सीमित रखा है. महाकवि केशव, देव, मतिराम या बिहारी अथवा अन्य शृंगार-रस के रसिक धुरन्धर कवियों के समान वासना को उभाड़ने में वे बहुत ही पीछे पड़ गये हैं. उनकी इस सीमा को चाहे उनका दोष माना जाय अथवा गुण, यह बहुत कुछ निष्पक्ष समालोचकों के हाथों में ही है, किन्तु वस्तुस्थिति यही है.

---

१. देखिये सम्मत्त० १.८.१.

२. See Imperial Gazetteer Vol. IX Page 353.

३. देखिये—सम्मत्त० १-६-१०-१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता तभी मानी जाती थी, जब कि सुयोग्य संतति की प्राप्ति हो. उसके अभाव में उत्तराधिकार की एक विकट समस्या उठ खड़ी होती थी. उसके अभाव में कौन तो चल-अचल सम्पत्ति का संरक्षण करेगा, गृहस्थ-धर्म-नीति का प्रवर्तन कौन करेगा ? आश्रितों के आँसू पोंछकर उनका लालन-पोषण कौन करेगा ?''[1] विशेषतया माँ का आधार तो पति की मृत्यु के बाद पुत्र ही है उसीको अपनी आशाओं का केन्द्र मानकर वह घर में वास करती है.[2]

आर्थिक स्थिति की दृष्टि से कवि ने प्रशंगवश बहुत-सी बातों की चर्चा की है. वस्तुत: अर्थ-व्यवस्था किसी भी समाज या राष्ट्र की रीढ़ होती है. उसकी पृष्ठभूमि में विभिन्न परम्पराएँ निर्मित होती हैं. जन-जीवन का विकास तथा रीतिरिवाज भी उसी के आलोक में प्रकाशित होते हैं. मालवा का रइधू कालीन समय कई दृष्टियों से समृद्ध था. समाज, संस्कृति एवं साहित्य का जो अभूतपूर्व विकास वहाँ हुआ, उसका प्रमुख कारण वहाँ की शान्तिपूर्ण एवं स्थिर राजनीति एवं अर्थव्यवस्था ही थी. कवि के सम्मुख आर्थिक सम्पन्नता का चित्रण करने के लिये इतनी सामग्री थी कि उसे वह अपने साहित्यरूपी विशाल क्षेत्र में दोनों हाथों से उछाल-उछालकर बिखेरता चला है. सामान्य-जन को उसका चुन सकना कठिन है. कवि के अनुसार मालव जनपद सभी प्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण था.[3] ऐसी कोई भी वस्तु न थी जिसका कि वहाँ अभाव हो.[4] वहाँ का व्यापारी वर्ग न्यायपूर्वक सम्पत्ति का अर्जन करता था फिर भी उसका उपयोग भोगैश्वर्य में नहीं करता था. लोग सदैव ही इस प्रकार सोचा करते थे कि 'ऐसी सम्पत्ति के अर्जन एवं संचय से क्या लाभ जिससे दीन-दुखी एवं आवश्यकता वाले लोगों की आवश्यकताएँ ही पूर्ण न हों.'[5] 'पासणाहचरिउ'' की रचना-समाप्ति के बाद कवि ने जब उसे अपने आश्रयदाता खेमसिंह साहू को समर्पित किया तो उन्होंने कवि को द्वीप-द्वीपान्तरों से लाये गये विविध वस्त्राभूषणादि भेंट-स्वरूप प्रदान किये थे.[6] इससे प्रतीत होता है कि साहू खेमसिंह तथा अन्य लोगों का व्यापार विदेशों में भी चलता था तथा उच्चकोटि के कपड़े तथा सोना-चाँदी हीरा-मोतियों आदि सामग्रियों का प्रर्याप्त मात्रा में आयात-निर्यात किया जाता था.

नगर-वर्णन की दृष्टि से महाकवि रइधू ने अपनी प्रशस्तियों में ग्वालियर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है. उसके समय में वहाँ का वैभव अपने यौवन पर था. वहाँ के कलापूर्ण भवन एवं जिन मन्दिर, जन-कोलाहल से परिपूर्ण सुन्दर सड़कें, सोने-चाँदी एवं हीरे मोतियों से भरे हुए बाजार, स्थान-स्थान पर निर्मित दान शालाएँ, चटशालाएँ आदि किसी के भी मन को मोह सकती थीं. समृद्ध व्यापारी-वर्ग धर्म एवं साहित्य की सेवा में सदैव आग्रगामी रहता था. ग्वालियर में विद्वानों, कवियों का निवास-स्थान था. समाज में उन्हें खूब प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त होता था. नगरवधुएँ जब प्रभाती गीत एवं पूजन-भजन के सुन्दर पद्य मधुर स्वर लहरी से गाती हुई निकलतीं तो नगर में शान्ति का साम्राज्य छा जाता था. इसे देखकर कवि स्वयं ही आत्मविभोर हो उठता था. सर्व गुण-सम्पन्न होने के कारण कवि को ग्वालियर के लिये 'पण्डित' की उपाधि देनी पड़ी. वह कहता है कि—'पृथ्वी मण्डल में प्रधान, देवेन्द्रों के मन में भी आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाला, विशाल तोरणों एवं शिखरों से युक्त यह गोपाचल नगर ऐसा लगता है मानों पण्डित श्रेष्ठ गोपाचल हो.'[7] आगे चलकर कवि ने ग्वालियर-नगर का बड़ा ही सुन्दर एवं विशद वर्णन किया है.[8] ग्वालियर को

---

१. देखिये—सुकौशल चरित ३-१८-११.
२. देखिये—असुकौसल० ४।७।९.
३. देखिये—मेहेसर० १।४।८.
४. देखिये—मेहेसर० १।४।६.
५. देखिये—पउमचरिउ. १।३।१०.
६. देखिये—पासणाह० ७।१०।५-९.
७. देखिये—पासणाह० १।२।१५-१६.
८. देखिये—पासणाह० १।३।१-१४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित श्रेष्ठ की संज्ञा देकर भी कवि को जब पूर्ण सन्तोष न हुआ तब उसने पुनः उसे श्रेष्ठतमनगरों का गुरु भी उसे मान लिया.[1]

कवि के उक्त नगर-वैभव के वर्णन की शैली एवं परम्परा नगर के ऐतिहासिक तथ्य को व्यक्त करने की दृष्टि से तो अपना विशेष महत्त्व रखती ही है लेकिन इससे भी ज्यादा महत्त्व इस बात में है कि वह परवर्त्ती साहित्यकारों के लिये एक प्रेरणा का जनक बन गया. जो सिद्धहस्त कवि थे, वे उससे अनुप्राणित हुए तथा जो नवशिक्षित अथवा नव दीक्षित थे. उसका उन्होंने शब्दशः अनुकरण किया. महाकवि रइधू के लगभग ४०-५० वर्ष बाद ही एक माणिक्कराज (वि० सं० १५७६) नाम के कवि हुए हैं, जिन्होंने अपभ्रंश में 'अमरसेन चरिउ' नामक काव्य लिखा था. उसके प्रशस्ति-खण्ड में उन्होंने भी नगर-वर्णन किया है. उक्त कवि ने ४-६ शब्द बदल कर महाकवि रइधू का ग्वालियर नगर-वर्णन पूरा का पूरा आत्मसात कर लिया.[2]

इसी प्रकार 'पण्डित श्रेष्ठ' गोपाचल की चरणरज लेकर अपने को पवित्र मानने वाली सुवर्णरेखा नदी का चमत्कार भी देखिये कवि ने इस प्रकार वर्णित किया है :

> सोवण्णरेह णं उवहिं जाय णं, तोमरणिव पुण्णेण आय।
> ताइत्ति सोहिउ गोवायलक्खु, णं भज्ज समाण उं णाहु दक्खु। —पासणाह० १।३।१५-१६
> सोवण्णरेख णइ जहिं सहए, सज्जण वयणु व सा जलु वहए। —मेहेसर १।४।४

आजकल वही महाभागा सुवर्णरेखा नदी सूखकर मानों काँटा बन गई है. आज वही एक नदी के नाम पर बैलगाड़ी के रास्ते मात्र के रूप में बची है.[3]

To the eastside the denseness the houses is interested by the broad bed of the Suvernrekha or golden streak rivulet, which being generally dry, form some of the principal thoroughfares of the city (of Lashkar) and is almost the only one passable by Carts."

एक ओर ग्वालियर नगर जहाँ अर्थ एवं कला के वैभव का धनी था, दूसरी ओर वह प्रकृति का प्राङ्गण भी बना हुआ था. वहाँ के नदी, नद, वन, उपवन, विशाल सरोवर, हरे-भरे मैदान, सरोवरों में कूजने वाले कलहंस वापिकाओं में जल-क्रीड़ा करने वाले नर-नारी सभी के मनों को मोह लेते थे.[4] एक जगह तो कवि ने बड़ी ही सुन्दर कल्पना की है. उसके अनुसार नगर के 'भवन-भवन नहीं, राजा डूँगरसिंह की सन्तति परम्परा ही[5] थी.' कवि का भाव देखिये कितना गूढ़ है, एक तीर से दो लक्ष्यों की सिद्धि उसने की है. भवनों की कलात्मक भव्यता का दिग्दर्शन एवं दूसरी ओर राजा राजा के यश का स्थिरीकरण.

महाकवि रइधू ने अपनी प्रशस्तियों में अपने समकालीन दो राजाओं का उल्लेख किया है तोमरवंशी राजा डूंगरसिंह एवं उनके पुत्र राजा कीर्ति सिंह. ग्वालियर-राज्य के निर्माताओं में इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है. डूंगरसिंह जैसा वीर-पराक्रमी, धैर्यशाली, प्रजावत्सल, धार्मिक, उदार, निष्पक्ष, प्रगतिशील, साहित्य-रसिक एवं कलाप्रेमी राजा दूसरा नहीं हुआ. वह राज्य के सुख एवं समृद्धि का जनक था. वहाँ के रइधू कालीन जैन-साहित्य एवं कला के विकास का सारा श्रेय उसीको है. महाकवि रइधू के वर्णन के अनुसार डूंगरसिंह का समय 'सुवर्णकाल' ही था यह स्थिति उसे परम्परा से प्राप्त हुई हो ऐसी बात नहीं. उसने काँटों से भरा-पूरा ताज अपने सिर पर रखा था. मुगलों एवं उनके पूर्व के शत्रु

---

१. देखिये—पासणाह० १।३।१७-१८.
२. देखिये—डा० कस्तूरचन्द्र जी काशलीवाल द्वारा सम्पादित "प्रशस्ति-संग्रह (जयपुर १९५०) पृष्ठ ८०-८१.
३. See Murrys Northern India Vol. I pages 381-382.
४. देखिये—सम्मत्त० १।३।१-५.
५. देखिये—मेहेसर० १।४।५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजाओं ने अपने आक्रमणों से ग्वालियर को जर्जर कर दिया था. उसके समय में चतुर्दिक अनिश्चित परिस्थितियों का वातावरण था. ऐसी स्थिति में राजा डूंगर सिंह को राजगद्दी मिली थी. अनेकों रात्रियाँ घोड़े की पीठ पर ही काटने के बाद उस नरव्याघ्र ने अपने कुशल पराक्रम से शत्रुओं का बल नष्ट कर ग्वालियर के प्रजा-जीवन के इतिहास का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया था. रइधू-साहित्य में इसके प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलते हैं. एक स्थान पर कवि ने लिखा है.

तहिं तोमर कुलसिरि रायहंसु, गुण गण रयणाहस लद्धसंसु ।
अण्णाय णाय सासण पवीणु, पंचंग मंत सत्यहं पवीणु ।
अरिराय उरत्थलि दिण्ण दाहु, समरंगणि पत्तउ विजयलाहु ।
खग्गग्गि डहिय जें मिच्छवंसु, जस ऊरिय ऊरिय जे दिसंतु ।
णिव पट्टालंकिय विउल भालु, अतुलिय बल खलकुल पलयकालु ।
सिरि णिवगणेस णंदणु पयंडु, णं गोरक्खण विहिणउवसंडु ।
सत्तंग रज्ज भर दिण्ण खंडु, सम्माणदाण तोसिय सबंधु ।
करबाल पट्टि विप्फुरिय जीहु, पव्वंत णिवइ गयदलण सीहु ।[1]

राजा डूंगर सिंह का दरबार सभी के लिये समान रूप से खुला रहता था. प्रजा का कोई भी धनी या गरीब व्यक्ति उनके सम्मुख जाकर अपने दुःख-मुख की बातें सुना सकता था. पिछले एक स्थल पर संघपति कमल सिंह के साथ घटित एक घटना का उल्लेख किया ही जा चुका है. उससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि वह केवल तलवार का धनी एवं लड़ाकू मात्र ही न था अपितु प्रजा के सुख-दुःख का सच्चा सहभागी, सात्त्विक एवं साहित्य प्रेमी भी था. इससे भी बढ़ कर जो एक नवीन बात ज्ञात होती है वह यह कि—वह इतिहासवेत्ता भी था. कल्पना कीजिये ५०० वर्ष पहले के युग की जब कि यातायात के आज जैसे सुविधाजनक एवं शीघ्रगामी साधनों की उस समय कल्पना भी न थी फिर भी डूंगर सिंह ने सैकड़ों मील दूर स्थित सोरठ, आबू तथा दिल्ली आदि के इतिहास की जानकारी प्राप्त की थी तथा उन-उन राज्यों के आदर्शों से प्रेरणाएँ लेता रहा. यह कह सकना तो कठिन है कि महाकवि रइधू उनके गुरु थे किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वह रइधू का सम्मान करता था तथा उन्हें दुर्ग में रहने के लिये सर्वसुख-सम्पन्न निवास स्थान दिया था जैसा कि पूर्व में लिखा ही जा चुका है. उनकी सत्संगति में रहकर ही राजा ने आत्मिक एवं बौद्धिक विकास के साथ ही यदि इतिहास की जानकारी भी प्राप्त की हो तो यह असम्भव नहीं. कवि डूंगर सिंह से स्वयं ही अत्यन्त प्रभावित था. उसकी नीतिमत्ता, कलाप्रेम पराक्रम एवं एकच्छत्र राज्य की स्थापना का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है.[2]

णीइ तंरगिणी णावइ सायरु, सयल कलालउ णवि दोसायरु ।
वे पक्खुज्जलु णियपय पालउ, म्लिच्छ णरिंद वंस खय कालउ ।
एयच्छत्तु रज्जु रज्जु जिजो भुंजई, मुणियण विंदह दाणें रंजइ ।

डूंगर सिंह की पट्टरानी का नाम था चंदादे.[3] उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था कीर्तिसिंह. बल, पराक्रम एवं धार्मिक-कार्यों में वह अपने पिता से कम न था. कवि ने उसके सम्बन्ध में लिखा है :

तहु णंदणु णिरुवमु गुण णिहाणु, तेयग्गलु णं पंचक्खु भाणु ।
णं णवउ णसंकरु पुहमि जाउ, जं जय सिरीए पयडियउ भाउ ।
सिरि कित्तिसिंधु णामें गरिट्ठु, णं चंदु कलायरु जय मणिट्ठु ।[4]

---

१. देखिये—पासणाह० १।४।१-१२.
२. देखिये—मेहेसर० १।५।१-३.
३. देखिये—पासणाह० १।५।१.
४. देखिये—मेहेसर० १।५।३-५.

Jain Education International www.jainelibrary.org

तोमर कुल कमल वियास मित्त, दुव्वार वैरि संगर अतित्त।
डूंगर णिव रज्ज धरा समत्थु, वंदीयण समप्पिय भूरिअत्थु।
चउराय विज्ज पालण अतंदु, णिम्मल जसवल्ली भुवण कंदु।
कलि चक्कवट्टी पायड णिहाणु, सिरि कित्तिसिंधु महवइ पहाणु।[1]

श्री डा० हेमचन्द्रराय का इस विषय में कथन द्रष्टव्य है :[2]

Karan Singh[3] was a Vigorous rular as his father Raja Dungarsingh. He extended the boundaries of his Kingdom by fresh conquest and maintained cordial relations with the King of Delhi. In 1465 A. D. he was attacked by Hussain, the Sharqui King of Jaunpur, but a treaty of mutual friendship was soon concluded between them. When Bahlol Lodi, the energetic Afghan King of Delhi took the offensive against Hussain in 1478. Karan Singh rendered valuable assistance to the later. The arms of Bahlol Lodi-how ever, triumphed and he annexed the Jaunpur kingdom. He was deeply incensed against Karan Singh for having aided Hussain. After the conquest of Jaunpur Bahlol attacked tha chief of Dhaulpur, who purchased his safety by offering a Cash Nazar (नजर या नजराना). Bahlol now bore down on Gwalior with an army of two lacs, well mounted and well armed Karan Singh could not muster a force of even one half the number of the invadors and was therefore obliged to follow the example of Dhaulpur to escape molestation. However he shook off the yoke as soon as Bahlol was known to be busy elsewhere. In 1479 A. D. Karan Singh passed away and was succeeded by Kalyan Singh who ruled for a period of 7 years.

भट्टारकों की परम्परा में रइधू ने अपनी रचनाओं की प्रशस्तियों में विजयसेन गुणकीर्ति (वि० सं० १४६८–७३) यशःकीर्ति (वि० सं० १४८६–९७), क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति (वि० सं० १४९९) कुमारसेन (१५०६–३०) कमलकीर्ति (वि० सं० १५०६–१०) तथा उनके शिष्य शुभचन्द्र (वि० सं० १५०६–३०) का उल्लेख किया है. इनमें से भट्टारक यशःकीर्ति एवं भट्टारक शुभचन्द्र को कवि ने गुरुरूप में स्मरण किया है. भ० शुभचन्द्र का परिचय देने के लिये कवि ने एक बड़ी ही ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है, वह यह कि उनके गुरु भ० कमलकीर्ति ने कनकाद्रि (सोनागिर म० प्र०) पर एक भट्टारकीय गद्दी की स्थापना की थी जिसका पट्टधर भ० शुभचन्द्र[4] को ही बनाया गया था. कवि की इस सूचना से यह स्पष्ट है कि सोनागिर उस समय विद्या का बड़ा भारी केन्द्र बन गया था. भ० यशःकीर्ति के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि 'उन्होंने मुझे आशीर्वाद के साथ गुरुमंत्र दिया जिसकी कृपा से मैं कवि बन गया.'[5]

पूर्ववर्ती साहित्य एवं साहित्यकारों में कवि ने देवनन्दि एवं उनका जैनेन्द्र व्याकरण जिनसेन एवं उनका महापुराण रविसेण एवं उनकी रामायण, पविशेन (वज्रसेन ?) एवं उनका षड्दर्शन, सुरसेन (देवसेन ?) एवं उनका मेघेश्वर चरित, दिनकरसेन एवं उनके अनंग चरित का उल्लेख करते हुए महाकवि स्वयम्भू, चउमुह एवं पुष्पदन्त का अत्यन्त सम्मान पूर्वक स्मरण किया है. कवि के उक्त उल्लेखों से दो बातों की सूचना स्पष्ट मिलती है. प्रथम तो यह

१. देखिये—सम्यक्त्व कौमुदी-अन्त्य प्रशस्ति.
२. देखिये—The Romance of the fort of Gwalior Page 19-20.
३. कीर्ति सिंह का ही दूसरा नाम करन सिंह है.
४. देखिये, हरिवंस० १।२।१२–१३.
५. देखिये, मेहेसर० १।३।८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि कवि ने अपनी रचना के लेखन काल में उक्त साहित्य एवं साहित्यकारों को अपने सम्मुख एक आदर्श के रूप में रखा है तथा दूसरा यह कि कवि ने अपनी रचनाओं में जो कुछ भी लिखा है वह सब उसने परम्परा के अनुसार ही लिखा है आगम विरुद्ध नहीं.

इस प्रकार उक्त सूचनाओं से यह स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि १४–१५ वीं सदी (वि० सं० १४५०–१५३६) के इस महाकवि ने साहित्य-जगत् में कैसा अद्‌भुत कार्य किया है. साहित्य के साथ इतिहास का समन्वय कर उसने साहित्य समाज एवं राष्ट्र की बहुमुखी अमूल्य सेवा की है. मध्य भारत के सम्बन्ध में उनकी सूचनाएँ अत्यन्त नवीन एवं मौलिक हैं. इनके आधार पर वहाँ का एक सांगोपाँग, विशद एवं प्रामाणिक राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा मूर्ति, एवं स्थापत्यकला का सुन्दर इतिहास तैयार हो सकता है. विस्तार के भय से प्रस्तुत निबन्ध अत्यन्त संक्षेप में लिखना पड़ा है. इसीलिए इसमें पूर्ण सामग्री भी उपस्थित नहीं की जा सकी है. यद्यपि कुछ विशेष दिक्कतों के कारण रइधू के सभी ज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों में से कुछ ग्रंथ भी मुझे उपलब्ध नहीं हो सके, किन्तु जो मिल गये उन्हीं के आधार पर उक्त लेख एक बानगी के रूप में सहृदय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया गया है. कवि की सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं तथा दुर्भाग्य से उनकी सभी प्रतिलिपियाँ एक ही स्थान पर संग्रहीत नहीं हैं, देश के विविध शास्त्र-भण्डारों में इक्के-दुक्के यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं. वहाँ से आसानी से उपलब्ध कर उनका पूर्ण उपयोग किया जा सके ऐसी सुविधाएँ भी शोधकों के लिए अभी सम्भव नहीं हो सकीं. उक्त कवि के साहित्य पर अभी किसी का विशेष ध्यान भी नहीं गया है अतः प्रायः सभी प्रकार के साधनों के अभावों में भी यहां जो लिखा गया, यह एक साहसी प्रयास ही है. आशा है साहित्य जगत् इससे एक अप्रकाशित महाकवि का मूल्यांकन शीघ्र ही करेगा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org